

बक़लम
हज़रत तस्लीम
लखनवी

नज़ीर मियाँ

पहले तस्लीम करता हूँ उस रब्बुल-आलमीन अलख-निरंजन को कि जिसके पास अब तलक रूसी-अमरीकी राकेट नहीं पहुँच पाये। हजार बार अनगिनत सिजदे उस साँई सिरजनहार के नाम पर कि जिसने जगमग सितारों-जड़ा अनोखी आब व आनवाला ये अचंभे के बच्चे-सा ख़ल्क रचा, उसमें हिंद-जैसा मुल्क सिरजा, उसमें माशूक़ की कनखियों-जैसी आड़े-तिरछे बिछलने वाली बड़ी नाज़ो-अदावाली चंचल, शोख़, पतली कमर बल खाय की तस्वीर खैंचती हुई जलपरी- सी गोमती नदी बनायी, उसके किनारे शहर लखनऊ बसाया, उसमें बाजार नखास आबाद किया और नखास में नजीर मियाँ को बेलगाम छोड़ दिया कि जिनका सिन सत्तर की डैयाँ छू रहा है और दिल अब भी सत्रह की अँगनाई में ही गिल्ली-डंडा खेलता है।

आज तक किसी ने न तो नजीर मियाँ की बोलती बंद होते देखी है और न पैर

ही थमते देखे हैं । इनका अपना कोई नहीं मगर ये सबके हैं । जिंदगी बीत गयी, अपना कोई काम नहीं किया मगर गली के आठ-दस घरों के बड़े मियाँ हैं । किसी दुलहन, किसी बेटी ने बुलवाया कि नज़ीर मियाँ ये ला दीजिये और वो ला दीजिये तो चौक, अमीनाबाद दौड़े जा रहे हैं, पुराने माशूक़ों के आटा-दाल, गेहूँ-गोश्त ला रहे हैं । सब जनी क़समें दिला-दिला के कहती हैं कि नज़ीर मियाँ जल्दी लौट आइयेगा । सबको ये भी क़समें खा-खा कर यक़ीन दिलाते हैं कि जल्द लौट आऊँगा, मगर गली-सड़क में आते ही बातों का नशा ऐसा चढ़ता है कि वक़्त का ध्यान फिर किस मरदूद को रहता है ! गली से बाहर आते ही दाहिनी ओर वाली बाज़ार की पाँच दूकानों के ये नवाब-बे-मुल्क हैं । वहाँ पचास काम निकल पड़ते हैं, पचास रोकने-टोकने वाले मिल जाते हैं । फिर दुलहनें, बेटियाँ और माशूक़ाएँ इनके नाम पर भले झीखा करें, घड़ी देखा करें, कोसें, झुँझलायें, मगर नज़ीर मियाँ बेचारे बेबस हो जाते हैं । क्या करें ?

अभी परसाल की बात है । करामत हुसैन की लड़कियों ने अमीनाबाद से कोर्स की किताबें लाने को कहा । 'हाँ, अभी लाता हूँ' में चार दिन टल गये । अज़रा ने इन्हें घेर कर आँखों में आँसू भर कर कहा कि बड़े मियाँ आज ज़रूर ले आइयेगा वरना कल स्कूल में मेरी बड़ी किरकिरी होगी । नज़ीर मियाँ क़स्द कर के निकले कि आज ले के ही लौटूँगा । लोगों से आमना-सामना बचाने की गरज से ही पिछवाड़ेवाली गली से हो कर टाट-पट्टी, यहियागंज नापते हुए, नादानमहल रोड से बस पर सवार हुए । इस तरह अमीना-बाद पहुँच कर तसल्ली हुई कि चलो, अब किताबें खरीदते क्या देर लगती है ! किताबों की दूकान पर भीड़ में लाइन लगा कर खड़े हुए । पीछे एक जज साहब के अर्दली यारअली भी आ खड़े हुए । बिल्ले-चपरास वाले हमउम्र से नज़ीर मियाँ बातें किये बग़ैर भला क्यों कर रह सकते थे ? थोड़ी देर में सब-कुछ पूछ डाला । मालूम हुआ कि यारअली का एक लड़का तो सेक्रेटेरियट में चपरासी है मगर दूसरे का कहीं डौल नहीं बैठा । वो बड़ा हुनरमंद है । उसने एक ऐसा खास ज़रूरत का नायाब साबुन बनाया है कि चमड़ी जलती नहीं और असर जादू का-सा होता है । कई चीज़ें बनायी हैं । यारअली ने इस धंधे में फ़ायदा देख कर पाँच सौ रुपया लगाया मगर अब वो फँसा है क्योंकि लड़का बेचने का हुनर नहीं जानता । नज़ीर मियाँ छूटते ही बोले : 'मैं बेच दूँगा । परसों इतवार है । नखास में मेला लगता है । सौ टिकियाँ तो उसी दिन बेच दूँगा । तुम बस एक सैनबोट बनवा दो मुझे––तबीयत का ।'

'मगर सैनबोट बनवाने में भी मियाँ कुछ वक़्त तो आख़िर लगेगा ही और इतवार तो परसों है ।'

नज़ीर मियाँ हँस कर बोले : 'अजी, आपने भी क्या फ़िक्र पाली है । मैं कहता हूँ, बिरादर, कि ज़रूरत के हिसाब से थैलियों का डान्स पुरोगाम करवाते रहिए तो बारह घंटे में मैं चाँद को धरती पर उतार लाऊँगा । ये सैनबोट क्या चीज़ है ! रुपये पच्चीस ख़र्च होंगे आपके । आर्ट कालिज के डिज़ैन पर एक हसीना की फोटू बनेगी उसमें । माशूक़ छाप साबुन की खातिर किसी माशूक़ की ही फ़ोटू भी

होनी चाहिये । मैं बनवा दूँगा । इतवार की सुबह आप उसे सिकंदर कलंदर आफ़ इंडिया की दूकान पर टँगा पायेंगे। पच्चीस रुपये ये और दस-पाँच रुपये पन्नी-काग़ज़ वग़ैरा. . .'

'अजी पैकिंग-वैंकिंग सब बड़ी सुपर फ़ैन क़िसिम की हुई है, पांच सौ टिकियाँ बनी रक्खी हैं । मक्खीमार पौडर भी तैयार है ।'

'अजी, तब तो जनाब यारअली साहब, आप नज़ीर हुसैन को चुनौती दे रहे हैं । माशूक़ छाप साबुन और मक्खीमार पौडर बना के आपका लड़का बेकार रहे और वो भी इस खाकसार के रहते ? अजी ख़ुदा चाहेगा तो परसों ही आप के हाथ में सौ नहीं तो पिछत्तर रुपये जरूर रख दूँगा । जो मुनासिब कमीशन हो वह दे दीजियेगा । चलिये अल्ला-अल्ला, खैर-सल्ला । और यह तो एक दिन की बात हुई, जनाबेमन ख़ुदा झूठ न बुलवाये, एक महीने में इनकम-टैक्सवाला तुम्हारे पीछे-पीछे न दौड़ने लगे तो कहना । तुमने अभी हमें पहचाना नहीं है, अज़ीज़मन !'

दुबले-पतले मुनहने-से नज़ीर मियाँ हैं मगर उनके बदन में बिजली दौड़ती है । जो बात कहते हैं वह उनकी आँखों में, चेहरे पर, हाथ-पैरों में, अज़ो-अज़ो में तस्वीर बन कर फड़क उठती है । ओठों की दोनों कोरों पर नीचे की ओर झुकती हुई कत्थे की दो लकीरें मानों पैदाइशी निशान-सी ही चेहरे का एक अंग बन गयी हैं । उनका पान से सदा फूला रहने वाला गाल और ओठों की ये लकीरें इनकम-टैक्सवाली बात कहते हुए अपनी शान जता कर इतमीनान दिलाने की अदा में कुछ यों उचकी-बिचकीं कि यारअली को हँसी आ गयी । वे बोले : 'तुम ख़ूब मिले, उस्ताद । अमाँ रहते कहाँ हो ?'

'नख़ास में । वहाँ जिससे चाहें पूछ लीजिये । आप को हर कोई मेरी हिस्ट्री बतला देगा । जनाब आबिद हुसैन साहब मरहूम, डिप्टी कलक्टर, ख़ुदा जन्नत में भी सदा उनका रुतबा बुलंद करे, मेरे वालिद थे । वालिदा मेरी यहाँ की मशहूर डेरेदार थीं । उन्हीं डिप्टी साहब ने एक मकान बनवा दिया था । उसी में सड़क की तरफ़ दो दूकानें भी हैं । घर की एक कोठरी में पड़ रहता हूँ । बाक़ी मकान किराये पर उठा दिया है । दूकानों से भी किराया आता है । अकेले दम के लिए बहुत काफ़ी है । मैं तो कहता हूँ, हुज़ूरेवाला, ऊपर वाले का शुकर है, आज तलक किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया । इसीलिए कहता हूँ, भाईजान, जहाँ पाँच-सौ फँसे हैं वहाँ पच्चीस-तीस और फँसा दो । न उबरें तो बीच चौराहे पर मेरा हाथ पकड़ लेना । मगर उसकी आपको ज़रूरत ही न पड़ेगी । अल्लाह चाहेगा तो परसों करिश्मा दिखला दूँगा ।'

यारअली सोचने लगे, फिर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा : 'आप मेरे घर पर तशरीफ़ ले चलिये । तकलीफ़ तो होगी, मियाँ, मगर वहाँ दोनों लड़के होंगे। सारा हेसनेस हो जायगा।'

नज़ीर मियाँ ने जोश में आ कर क़दम बढ़ा दिया। किताबों के लिए यारअली ने यह कह कर टाला, कि इस वक़्त भीड़ बहुत है, कल सुबह आ कर ले जाऊँगा, तो नज़ीर मियाँ को भी शह मिल गयी। मन में अज़रा का आँसू भरा चेहरा और बार-बार आज ही ला देने का इसरार तस्वीर की गूँज बन कर समाया, चुभन

भी हुई, मगर नज़ीर मियाँ ने फ़ौरन ही अपने तईं तसल्ली दी कि बस अभी लौट कर आता हूँ। बातें करने में भला कितनी देर लगती है। ये गया और वो आया।

यारअली के घर में बातें करते और हुक़्क़ा-चाय पीते हुए वक़्त गुज़र गया। वहाँ से यारअली के दूसरे लड़के को साथ लेकर नख़ास में नवाबन के बेटे मुन्ने-खाँ के घर पहुँचे और कहा : 'बरखुरदार, आज तुम्हारी सआदतमंदी का इम्तहान है। मेरी तक़दीर का सितारा परसों आसमान से उतर कर नख़ास में आ खड़ा हो जायगा। लोग उसका करिश्मा देखेंगे। तू बस ज़री मेरे सितारे के उतरने के वास्ते सीढ़ी बना दे।'

मुन्नेखाँ 'मगर चचा, अजी चचा, सुनिये तो' करते ही रह गये पर नज़ीर मियाँ से पार न पा सके। बोले : "ऐसो माशूक़ की फ़ोटू बना दे बेटे कि 'नाज़ो अंदाज़ो अदा ग़म्ज़ाओ शोख़ी ओ हया—(औ') यक तरन्नुम के सिवा सब तेरी तस्वीर में' हो। तरन्नुम की कमी मैं पूरी कर दूँगा। न हो तो नन्हो की लौंडिया को सामने बुलवा के खड़ी कर ले। उसका एक हाथ कमर पर और दूसरे में माशूक़ छाप साबुन हो। आँखों में प्यासे प्याले दरसाना औ' होठों की मुस्कुराहट में दो बोतलों का नशा उँडेल देना, समझे मियाँ ? औ' ओढ़नी हवा में बड़े माई-डियर क़िसिम से फरफराये बरखुरदार, समझे ? बस, मेरा काम बन जायगा। दो टिकियाँ साबुन की तुझे मुफ़्त दिलवा दूँगा। अपनी ओर से नन्हो की लौं-डिया को पेजेंट कर देना।"



यारअली के लड़के से दस रुपये एडवान्स दिल-वाये। पाँच का नोट अपनी तरफ़ से मौज करने के लिए दिया। नन्हो की लौंडिया बुलवायी गयी। नज़ीर मियाँ ने आप खड़े हो के तमाम हाव-भाव नैन-सैन बतलाये। बहरहाल, सनीचर

की शाम को माशूक छाप साबुन का साइनबोर्ड बन कर तैयार हो गया। नीचे 'स्टाकिस्ट, कलंदर सिकंदर आफ इंडिया, लखनऊ' भी लिखवा दिया गया।

कलंदर सिकंदर की दूकान इनका खास अड्डा है। वे इन्हीं के किरायेदार हैं। कलंदर सिकंदर चार भाई थे। मुल्क के बँटवारे में दो पाकिस्तान चले गये तो नज़ीर मियाँ ने इनके नाम के आगे 'आफ़ इंडिया' जोड़ दिया। तब से उनकी पन्सारी की दूकान का नाम भी यही पड़ गया है। उनकी दूकान क्या है मानों रंग-बिरंगे साइनबोर्डों की नुमाइशगाह है। तीन दर की पुरानी दूकान पर छोटे-बड़े सब मेल के क़रीब पंद्रह-सोलह साइनबोर्ड लटक रहे हैं। छोटे भाई सिकंदर मियाँ को इसका खब्त है, माल उसी कंपनी का बेचते हैं जो उन्हें तस्वीरोंवाला साइनबोर्ड देता है। पासिंग शो सिगरेट का टोपदार साहब, पहलवान छाप बीड़ी का पहलवान, लाइफ़बॉय साबुन लगा कर नल के नीचे नहाता-मुसकुराता लौंडा, एक सौ इकतीस नंबर की बीड़ी फूँकती और आँख मारती हुई हसीना, लंगूर छाप खिज़ाब का लंगूर, ग़रज़ की आर्ट के नायाब नमूने वहाँ लटके हुए हैं। इतवार की सुबह सात बजे सब साइनबोर्डों के ऊपर माशूक़ छाप साइनबोर्ड भी चढ़ गया।

इतवार का रोज़ अल्लाह मियाँ की तरफ़ से खास तौर पर नखास के लिए ही मुक़र्रर किया गया है। उस दिन लखनऊ के तमाम अक़्लमंद लोग, क्यूरियो-डीलर, ग़रीब शौक़ीन और देहाती लोग-लुगाइयाँ नखास में इस तरह अटाटूट भर जाते हैं गोया नखास दिल हो और उसमें वे अरमानों की भीड़ बन कर समाये हुए हों।

सुबह आठ बजे से ही भीड़ बढ़ने लगी, रौलचौल शुरू हुई। फ़ुटपाथ की दूकान पर बिकने वाले मुर्ग़े अपनी पुरानी साथिनों से आखिरी रोमन्स लड़ाने लगे। कबूतरों की गुटुरगूँ और तोते, मैनों, तीतरों, लालों, बटेरों और चकोरों—तरह-तरह के पंछियों की रंगारंग चहचहाहट ने धरती के उस टुकड़े का आसमान सिर पर उठा लिया और जब नन्हें परिंदों से इतना बोझ सम्हल न सका तो नज़ीर मियाँ ने लाउडस्पीकर हाथ में लेकर माशूक़ छाप का नारा बुलंद किया। भीड़ उनकी तरफ़ खिंचने लगी। सिकंदर कलंदर की दूकान के आगे टीन की कुर्सी पर खड़े हो कर नज़ीर मियाँ चहकने लगे : 'अहा-हा-हा-हा ? हाज़रीन शायक़ीन, गुलंदाम, गुलबदन जानेजहाँ क़त्ताले आलम आशिक़ोमाशूक़ ! चले आइये, चले आइये। ए हज़रात, यह वो नखास है जहाँ कभी घोड़े बिकते थे लेकिन अब लोगों का नसीबा बिकता है। जो खुशनसीब हैं वही नखास में आते हैं, सैकड़ों का माल टके-टके में ले जाते हैं। हज़रात, ये वो नखास है कि जिसकी शान में फ़िरदौसी तक कह गया है कि 'अगर फ़िरदौस, बररूये ज़मींअस्त, नखास-अस्तो, नखासअस्तो, नखासअस्त।' देहली के बादशाह से जब लखनऊ की यह रौनक़ देखी न गयी तो देहली के लाल क़िले में नखास की टक्कर का दीवाने खास बनवाया और फ़िरदौसी के शेर में थोड़ा-सा फेर-फार कर वहाँ लिखवा दिया। मगर हज़रात, ज़माना जानता है, अजी मैं कहता हूँ कि हिस्ट्री-तवारीख़ गवाह है कि दीवाने-ख़ास सूना हो गया मगर नखास में अब तक रौनक़ है। अजी लोग टके-टके में अनमोल किताबें यहाँ से ले

जाते हैं। पालने और खाने के लिए मुर्ग़ और बकरे, चहकाने के लिए लालो-बुलबुलो-बटेर, रिझाने के लिए लहँगा-ओढ़नी-टिकली-बिंदी और रीझने के लिए माशूक़ छाप साबुन तक सब कुछ यहाँ सस्ते दामों में मिलता है। यहाँ जो चीज़ बिकने आती है वह ख़ुदाई मेहर होती है और जो ख़रीदार आते हैं उन पर ख़ुदा मेहरबान होता है।'

गरज़ कि दोपहर होते न होते नज़ीर मियाँ ने माशूक़ छाप साबुन की धूम मचा दी। दाइयाँ मुग़लानियाँ आतीं, बुर्के-वालियाँ नक़ाब उठाये या गिराये हुए गुज़रतीं, देहातिनों के रेले आते और उन्हें देखते ही नज़ीर मियाँ वो फ़बतियाँ कसते कि भीड़ में ठहाके उमड़ पड़ते, सुनने-वालों का जी लहालोट हो जाता। ढाई बजे तक नज़ीर मियाँ ने निन्नानबे टिकियाँ बेच डालीं, एक बी हैदरी के लिए बचा ली। इकन्नीवाले मक्खीमार पाउडर के ग्यारह दर्जन पैकेट बेचे। जब पैसे दिये तो यारअली का लड़का पाँव पकड़ने लगा। यारअली के लड़के को चौकस हिसाब दे और अपना कमीशन लेकर नज़ीर मियाँ पल भर भी न रुके, अज़रा की किताबें लाने के वास्ते अमीनाबाद की ओर लपके। किताबों के साथ पाँच रुपये के रसगुल्ले अपनी तरफ़ से ले गये। लड़कियों को मना लिया।

इन्हीं गलियों और इसी सड़क पर नज़ीर मियाँ बच्चे से बड़े मियाँ हुए हैं। नब्बू पानवाला और सिकंदर कलंदर तो इन्हीं के किरायेदार हैं। उनका भला तो ये चाहते ही हैं। पड़ोस के हबीब चाय-वाले, यूसुफ़ हलवाई और सिरीकिशन साइकिलवाले के भी ये ख़ास सगे हैं। यों इनका अड्डा सिकंदर कलंदर की दूकान है मगर 'हबीब रेस्टूरेंट' में भी बैठा करते हैं। सिकंदर की दूकान पर सौदा-सुलुफ़ लेने के लिए आनेवाली औरतों-महरियों से छेड़छाड़ किया करते हैं। सड़क से गुज़रते इक्के-ताँगों, रिक्शों पर ज़नानी सवारी देखी नहीं कि उधर ही ताकने लगे। अपने आपको हुस्न का जौहरी कहते हैं। इसी आदत की बदौलत दो-एक बार पिटे भी हैं।

नज़ीर मियाँ माशूक़ों के पीछे सदा बदहवास घूमे मगर अक़्ल के पीछे लाठी ले कर न पड़े। पहुँच के बाहर की औरतों को बेबसी में सराहते ज़रूर हैं पर जहाँ बराबर की जोड़ होती है वहीं बुढ़भस की लार टपकाते डोलते हैं। दिन-रात मजनूँ की तरह वस्ल और हिज्र के गीत गाते हैं। मलाई के चप्पन, रबड़ी के दोने, साबुन, तेल, इत्र, गजरे लिये ख़ुशामद में दौड़ते हैं। जहाँ दाँव लग गया वहाँ महीने-दो महीने दिलोजान निसार किया, बुझते दिये की तेज़ लौ के मानिंद अपनी हविसों का खिलवाड़ किया, मुनासिब पैसे भी ख़र्च किये मगर फिर कहीं और बहके।

फ़िलहाल छह महीने से गुलाबबाड़ी के अख़्तर नवाब की एक बेवा महरी हैदरी का कलमा पढ़ रहे हैं। ख़ुद ही कहते हैं कि हैदरी जादूगरनी है वरना इतने दिनों तक कोई उन्हें बाँध नहीं सका। ये उसकी ख़िदमत में लगे रहते हैं और वह इनकी। हैदरी से भी पहली मुलाक़ात यहीं कलंदर सिकंदर की दूकान पर ही हुई थी। पचास-पचपन का सिन मगर नाक-नक़्शा ऐसा सुडौल कि हुस्न के जौहरी नज़ीर मियाँ चुप न रह सके।

धीरे-धीरे दूकान की पटरी पर उसके पास आ कर बैठ गये और प्यासी नजरों से निहारते हुए आशिक़ों की गुटुरगूँ बोली में पूछा : 'बी महरी, रहती कहाँ हो ?'

बी महरी भी कम रंगीन न थीं। इनकी नजरों का भाव ताका और मुस्कुरा कर कहा: 'इसी जमाने में, और कहाँ रहूँगी ?'

नज़ीर मियाँ फड़क उठे, बोले : 'तुम्हारा ज़माना तो इंशाअल्लाह अब आयेगा। नज़रबद्दूर, अभी तो खिलती कली हो।'

'ऐ वाह मियाँ, नज़र बड़ी तेज़ है। दूर की देखते हो। ज़रा कबर में लटकते अपने पाँवों को भी निहार लो।'

'अमाँ वहाँ तो तुम्हें देखने के पहले देखते ही थे मगर अब तुम इन्हें सुबू-शाम कूचये-जानाँ में गश्त लगाते देखोगी। लाओ मैं पहुँचा दूँगा। मेरे रहते भला तुम बोझा उठाओगी?' कहते हुए गठरी उठा ली और आगे बढ़े। बी महरी तेज हुईं, तेज़ी से लपकीं, गठरी छीनने लगीं। उधर से हबीब ने तालियाँ बजायीं, 'चचा ले भागे।' आसपास लोगों के ठहाके पड़े। बी महरी के अधेड़ चेहरे पर शर्म की लहर यों दौड़ीं मानों तेज़ हवा के झोंके से पके धान का खेत लहराया हो। बड़े मियाँ उस अदा पर रीझ-रीझ उठे। प्यासी नज़रों से देखते, हाथ से सामान देते हुए बी महरी का हाथ छू कर खोयी हुई मुस्कुराहट के साथ बोले : 'ये सामनेवाला मकान तुम्हारा ही है?'

बी महरी बढ़ चलीं, नज़ीर मियाँ साथ-साथ बातें करते चले : "जब से इटाये-वाली गुलशब्बो इसमें रहने लगी है तब से पिछत्तर मकान के आते हैं, बीस कलंदर वाली दूकान के आते हैं और दस नब्बन देता है। एक सौ पाँच किराये के और बीस-पचीस और पीट लेता हूँ। न कोई आल, न औलाद, न जोरू, न जाँता, न कोई शौक़। क्या कहें, पचास हज़ार की जायदाद है और ये दिल है—हम हथेली पे लिये-लिये घूमते हैं मगर कोई दिल का नाज उठाने वाली ही न मिली। यों माल हड़पने के लिए चोंचले सब दिखाती हैं। अब तुम्हीं इन्साफ़ करो बी महरी कि हम क्या कोई गौरवे हैं। अरे, अब लौंडपन भी नहीं रहा कि धोखा खाते फिरें। बक़ौल क़से 'उन्हें भी जोशे-उल्फ़त हो तो लुत्फ़ उट्ठे मुहब्बत का, हमीं दिन-रात गर तड़पे तो फिर इसमें मज़ा क्या है?"

यों ही अपनी सुनाते हुए बी महरी के साथ-साथ उनके मालिक की ड्योढ़ी तक पहुँच गये। देखते ही बोले : 'अख्खाह, नवाब अख्तर साहब की कोठी में काम करती हो! अमाँ, तब तो तुम अपने घर की ही निकलीं। अरे-अरे, सुनो तो बी



महरी, नवाब साहब अगर दीवानख़ाने में तशरीफ़ रखते हों तो ज़ई मेरे आने की इत्तिला करना, कहना नख़ासवाले नज़ीर मियाँ आये हैं। अमाँ, पूरी बात तो सुन लो। तुम तो ख़ुदा की क़सम दिल तो उड़ाती ही हो मगर आप भी उड़ती हो।'

'ऐ तो और क्या करें, तुम तो हो नाठे निगोड़े औ यहाँ पचासों काम पड़े हैं।'

नजीर मियाँ ने एक सर्द आह खींची, कहने लगे : 'ठहरे हैं हम तो मुजरिम टुक प्यार कर के तुमको; तुमसे भी कोई पूछे तुम क्यों हुए पियारे'। ज़री अपना नाम तो बतला दो, तुम्हें हमारी जान क़सम।'

इसके बाद मलाई के चप्पन, इतर-फुलेल, कंघी-आईना, यहाँ तक कि माशूक़ छाप साबुन की सौवीं टिकिया भी बी हैदरी की ख़िदमत में पहुँची। बारे महीना पचीस रोज के चक्करों ने बी हैदरी के बूढ़े दिल में भी इश्क़ की लहरें उठा दीं। तबसे वही उनकी इश्क़िया जिंदगी का इकलौता सहारा है। ऐसे बस में हुए हैं कि जान सौंप दी पर माल नहीं सौंपा। हाँ, लालच बढ़ाते हैं। एकाध जेवर दे भी दिया है। कभी-कभी यह इरादा भी ज़ाहिर करते हैं कि हैदरी अगर नौकरी छोड़ दे तो वह उसे अपने घर में डाल लेंगे और आख़िरी वक़्त में ज़ेवर-जायदाद भी उसी के नाम लिख जायेंगे। मगर यों तो नजीर मियाँ पहले भी कई बार सोच चुके हैं। बी हैदरी के बाद आगे कब और किस-किस के लिए फिर ये नेक इरादे जागेंगे, इसे सिर्फ़ ऊपर वाला ही जानता है। •



◆◆◆

यह पूछे जाने पर कि अपने नये अफ़सर के विषय में उसका क्या मत है, एक नवयुवती सेक्रेटरी ने कहा, "हाँ, वे कोई विशेष बुरे आदमी नहीं हैं, लेकिन स्वभाव से कट्टर और जिद्दी अवश्य हैं।"

"इसका क्या मतलब ?"

"बात यह है"––नवयुवती ने अपना आशय स्पष्ट किया, "वे सोचते हैं कि शब्दों की हिज्जे एक ही प्रकार से की जा सकती है।" ◆◆◆